Dr. Vandana Suman
Associate professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara

B. A. Part -1 (Hons)
Paper - I
Indian philosophy

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

1

(प्रकृति)

सांख्य के अनुसार 'प्रकृति' अजा, अनादि शक्ति है जो समस्त विश्व को उत्पन्न करती है। समस्त विषयों का अनादि मूल-स्रोत होने के कारण यह प्रकृति नित्य और निरपेक्ष है क्योंकि सापेक्ष और अनित्य पदार्थ जगत् का मूल कारण नहीं हो सकता। मन, बुद्धि और अहंकार जैसे सूक्ष्म कार्यों का आधार होने के कारण प्रकृति एक गहन, अनंत और सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति है जिसके द्वारा संसार की सृष्टि और लय का चक्र-प्रवाह निरंतर चलता रहता है।

चूँकि समस्त विश्व कार्य है जिसका कारण प्रकृति है। इसलिए विश्व के पदार्थ प्रकृति पर निर्भर करते हैं। यह स्वतंत्र है, इसलिए इसे 'प्रधान' कहा गया है। प्रकृति एक है। यह काल और स्थान में सीमित नहीं है बल्कि यह 'नित्य' है। यह 'अचेतन' है। प्रकृति का विकास होता है इसलिए इसे 'अदृश्य' कहा जाता है। वह 'सक्रिय' है। जबतक विकास की क्रिया आरम्भ नहीं होती, प्रकृति में किसी प्रकार का भेद नहीं रहता। जब रजबली मयती है, तो विकास आरम्भ होता है। प्रकृति को देखा नहीं जा सकता। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके गुणों के आधार पर इसका अनुमान किया जाता है और उसमें कोई विरोध नहीं। इसलिए यह वास्तविक है।

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

अभी प्रकृति प्रसूत शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि है। प्रकृति 'परिणामी' है क्योंकि समस्त विश्व उसका परिणाम है। इसे 'प्रसवधर्मि' कहते हैं, क्योंकि समस्त संसार को उत्पन्न करना ही उसका धर्म या स्वभाव है। यह 'त्रिगुणात्मिका' कहलाती है, क्योंकि सत्व, रज और तम तीन इसके गुण हैं। यह सम्पूर्ण विश्व (कार्य) की अविकसित अवस्था है, अतः इसे 'अव्यक्त' कहते हैं। यह संसार का अचेतन कारण है अतः इसे 'जड़' कहते हैं। गतिशील होने के कारण यह 'शक्ति' कहलाती है। समस्त विकारों को पैदा करने के कारण 'प्रकृति' ज्ञान का विरोधी होने से 'अविद्या' तथा विचित्र संसार की रचना करने के कारण यह 'माया' कहलाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के अनेक नाम हैं। चूंकि प्रकृति स्वयं कारणहीन है, अतः यहाँ Fallacy of infinite regress भी नहीं हो सकती। इसलिए सांख्य ने विश्व का आधार प्रकृति को माना है।

प्रकृति की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए सांख्य दर्शन में अनेक तर्कों का सहारा लेता है।

1. भेदानाम परिमाणात्—

विश्व की समस्त वस्तुएं परतंत्र हैं, सीमित तथा सापेक्ष हैं। इसलिए प्रकृति को विश्व का कारण माना गया है क्योंकि प्रकृति को स्वतंत्र, असीमित तथा निरपेक्ष सत्ता माना गया है।

(2.) भेदानाम् अन्वयात् — जगत् की वस्तुएँ भिन्न-भिन्न हैं। इन्हें सामान्यतः सुख-दुःख और उदासीनता पायी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जगत् की वस्तुओं का कारण एक ऐसा पदार्थ है जिसमें सुख-दुःख और उदासीनता का कारण है। ऐसा पदार्थ केवल प्रकृति है।

(3.) शक्तितः प्रवृत्तेश्च — विश्व कार्य है जिसका कोई न कोई कारण अवश्य है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य अभिव्यक्त रूप से कारण में निहित है। इसीलिए विश्व-व्यापी कार्य का कारण ऐसी वस्तु को होना चाहिए जिसमें सम्पूर्ण विश्व अभिव्यक्त रूप से निहित है। वह कारण प्रकृति ही हो सकता है।

(4.) कारण-कार्य-विभागात् — विश्व का कारण स्वयं विश्व नहीं हो सकता क्योंकि कारण और कार्य में भेद होता है। विश्व का कारण कोई पदार्थ नहीं हो सकता। क्योंकि पदार्थ का भी कोई कारण होगा। अतः हम Fallacy of infinite regress से ग्रसित हो जायेंगे। इसलिए हम विश्व का कारण उसको मानेंगे जो स्वयं कारण हीन है। वह प्रकृति हो सकती है।

(5.) अविभागात् वैश्वरूप्यस्य-

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

कारण और कार्य में तादात्म्य सम्बन्ध है। सृष्टि के समय कारण से कार्य का निर्माण होता है और प्रलय के समय कार्य कारण में विलीन हो जाता है। जैसे - मिट्टी का बर्तन। इसीप्रकार विश्व का कारण किसी वस्तु को का होना चाहिए जिससे कि सृष्टि के समय समस्त विश्व की वस्तुएं निर्मित हो और प्रलय के समय सब इसी में विलीन हो जाए। वह कारण प्रकृति है। इन पाँच तर्कों को भी कपिल ने इसप्रकार कहा है -

" भेदानाम् परिमाणात समन्वयात शक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारण-कार्य विभागाद् विभागा वैश्व रूपस्य ॥

(6) विश्व के पदार्थों में एक प्रकार की एकता है और एक सिलसिला भी है। अनेक होते हुए भी विश्व के पदार्थों का अपना एक संगठन है सिलसिलेवार ढंग से बद्ध जा सकता है। इस संगठन की व्याख्या के लिए हमें एक कारण को मानना ही होगा और वही 'प्रकृति' है।

(7.) यदि विश्व के विकास का विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि विकास की हर सीढ़ी में किसी एक ही नियम की अभिव्यक्ति हो रही है। विकास अन्धा या मनमाने ढंग पर नहीं होता। इसका कुछ आधार है, कुछ नियम है। उस आधार को विकास की किसी एक अवस्था से मिलाया नहीं जा सकता है। वह आधार हर अवस्था में

है, किन्तु हर अवस्था से अधिक मौलिक है। इस आधार को ही 'प्रकृति' माना जाता है।

प्रकृति का सबसे मुख्य लक्षण यह है कि इसमें तीन गुण होते हैं — सत्व, रजस और तमस। इसलिए प्रकृति को 'त्रिगुणात्मक' कहा गया है। ये गुण वस्तु नहीं हैं वरन् Elements हैं। इनके बिना संयोग के प्रकृति की कल्पना करना व्यर्थ है। इन गुणों का हमें प्रत्यक्ष नहीं होता। इनकी सत्ता और वास्तविकता का हम अनुमान करते हैं। कार्य-कारण का तादात्म्य संबंध रहता है। इसलिए विषय रूपी कार्यों का स्वरूप देखकर हम गुणों का स्वरूप अनुमान करते हैं। संसार के समस्त विषय - सूक्ष्म बुद्धि से लेकर स्थूल पत्थर, लकड़ी पर्यंत में तीन गुण पाए जाते हैं जिनके कारण वे सुख - दुःख या मोह उत्पन्न करनेवाले

होते हैं। एक ही वस्तु एक के मन में ~~सुख दुःख~~ ~~[illegible]~~ दूसरे के मन में ~~दुःख~~ और तीसरे के मन में उदासी के भाव की सृष्टि करती है।
जैसे — एक ही संगीत से रसिक को आनंद, बीमार को कष्ट और भैंस को हर्ष या विषाद कुछ नहीं होता। इसी तरह जज का फैसला एक पक्ष के लिए आनंददायक दूसरे पक्ष के लिए कष्ट दायक और और लोगों के लिए कुछ भी नहीं होता। वही नदी सैर करनेवाले के लिए आनंद की वस्तु है ~~[illegible]~~ डूबनेवाले के लिए मृत्यु-स्वरूप है और उसमें रहनेवाले जानवरों के लिए साधारण वस्तु है। कार्य गुण कारण में वर्तमान रहता है। इससे यह सूचित होता है कि विषयों के मूल कारण में भी सुख - दुःख और मोह के तत्व विद्यमान है। ये तीनों तत्व क्रमशः सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण कहलाते हैं। ये ही तीनों गुण प्रकृति के मूल तत्व हैं जिनसे संसार के समस्त विषय बनाते हैं।
इन तीनों को गुण कहा गया है। यहाँ 'गुण' शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में नहीं हुआ है। ये तीनों साधारण अर्थ में

'गुण' नहीं हैं। ये तो प्रकृति के वास्तविक रूप हैं। जिस प्रकार का सम्बन्ध रंगीन कपड़े और इसके धागों में है, वही सम्बन्ध प्रकृति और इन गुणों में है। धागा कपड़े का गुण नहीं है, बल्कि वही तो कपड़ा है। इसी प्रकार ये गुण साधारण अर्थ के 'गुण' नहीं हैं, बल्कि 'प्रकृति' है। इनके 'गुण' कहे जाने का दो कारण हो सकता है— 1. इनका कार्य पुरुष के लिए होता है। ये पुरुष की कैवल्य सिद्धि के साधक हैं, इनका अपना कोई अलग प्रयोजन नहीं है। शायद इसीलिए इन्हें 'गुण' कहा गया है। 2. एक रस्सी में तीन बान होते हैं और उन्हीं बानों को एक में बटकर रस्सी तैयार की जाती है। इन तीन 'गुणों' (बानों) से बटी रस्सी - प्रकृति - ही पुरुष को बाँधकर बन्धन में डाल देती है। शायद इसी कारण वश इन्हें 'गुण' कहा गया है। गुण सूक्ष्म है इस कारण इसे अनुमान के द्वारा जाना जा सकता है। प्रकृति के तीन गुण इस प्रकार हैं—

1. सत्त्व गुण — यह स्वयं प्रकाशपूर्ण है तथा अन्य वस्तुओं को भी प्रकाशित करता है। सत्त्व के कारण मन तथा बुद्धि विषयों को

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

ग्रहण करते हैं। इसका रंग श्वेत है। यह सुख का कारण होता है। सत्व के फलस्वरूप ही सूर्य पृथ्वी को आलोकित करता है। इसका स्वरूप हल्का तथा लघु होता है। सभी हल्की वस्तुएं तथा धुएं का ऊपर की ओर जाना सत्व के कारण ही सम्भव होता है। सभी प्रकार की सुखात्मक अनुभूतियाँ जैसे— हर्ष, उल्लास, तृप्ति, संतोष आदि सत्व के कार्य हैं।

2. रजस गुण — रजस क्रिया प्रेरक है। यह स्वयं चलायमान है तथा वस्तुओं को भी उत्तेजित करता है। इसका स्वरूप गतिशील एवं stimulating है। रजस के कारण ही हवा में गति दिखाई देती है। इन्द्रियाँ अपने विषयों के प्रति दौड़ती हैं। रजस के प्रवृत्ति में आकर मन कभी-कभी चंचल हो जाता है। इसका रंग लाल है। सत्व और तमस गुण निष्क्रिय होते हैं। रजस के प्रभाव में आकर वे सक्रिय हो जाते हैं। सभी प्रकार की दुःखात्मक अनुभूति जैसे- विषाद, चिन्ता, असंतोष, अतृप्ति आदि रजस के कार्य हैं।

3. तमस गुण — तमस का ज्ञान अंधकार का प्रतीक है। यह सत्व का प्रतिकूल है। यह भारी होता है तथा ज्ञान प्राप्त करने में बाधक होता है, तमस निष्क्रियता का द्योतक है। इसका रंग काला होता है।

यह सत्व और रजस गुणों की क्रियाशीलता का विरोध करता है। तमस के फलस्वरूप मनुष्य में आलस्य और निष्क्रियता की उत्पत्ति होती है।

ये तीनों गुण विश्व के सभी पदार्थों में हैं। ऊपर से देखने पर इनमें विरोध दिखाई देता है इनके गुण एक-दूसरे के विरोधी हैं, फिर भी ये तीनों एक साथ सहयोग से रह सकते हैं। ये सदा साथ रहते हैं। इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। यहीं एक बंका हो सकती है। इन तीनों के गुणों को कैसे से पता चलता है कि इनमें विरोध है फिर ये एक साथ कैसे रहते हैं? इनमें दो प्रकार का सम्बन्ध है। एकता यह कि हर गुण दूसरे को दबाकर प्रमुख होना चाहता है और दूसरा यह कि इस विरोध के रहने पर भी इनमें अजीब सहयोग है। मनुष्य कभी खूब काम करता है, खुश रहता है, तो कभी दुखित भी हो जाता है और कभी-कभी उसे आलस्य घेरे रहता है। इन सभी अवस्थाओं में अलग-अलग

गुण प्रमुख हो जाते हैं। इसी प्रमुखता के कारण मनुष्य - मनुष्य में अन्तर होता है। यदि कोई मनुष्य आलसी है, निष्क्रिय है, कोई चेष्टा या कुछ परिश्रम नहीं करता तो उसमें तमस का आधिक्य है। यदि कोई प्रसन्न रहता है और दूसरों को प्रसन्न रखता है, ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक है तो उसे हम सात्विक मनुष्य कह सकते हैं। अर्थात् जिस मनुष्य में जिस गुण की प्रमुखता है, उसे उसी नाम से पुकार सकते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि इनमें पूर्ण विरोध है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि इनमें सहयोग नहीं है। ये तीनों हर वस्तु में जिसे हम सात्विक मनुष्य कहते हैं उसमें भी रजस और तमस है। किसी-किसी अवसर पर वह भी तामसिक मनुष्य के समान कार्य करेगा, हालाँकि अभी उसमें सत्व की प्रमुखता है।

तीनों गुण सदा साथ ही रहते हैं। इस विचित्र संघर्ष और सहयोग (Conflict and Co-operation) की दशा को सांख्य एक उपमा के द्वारा

समझाने की चेष्टा करता है। एक दीपक के प्रकाश के लिए तीन वस्तुओं का होना आवश्यक है, तेल, बत्ती और प्रकाश की लौ। इन तीनों का स्वरूप एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न है। इनमें केवल भिन्नता ही नहीं विरोध भी है। बत्ती तेल को सुखा देती है, आग बत्ती को जला देती है। फिर भी इन तीनों में सहयोग और ऐसी सहयोग के फलस्वरूप दीपक का प्रकाश होता है। ऐसी प्रकार इन तीनों गुणों में विरोध है और सहयोग भी।

आरम्भ में ये गुण प्रकृति में एक साम्यावस्था (State of equilibrium) में रहते हैं। उस समय इनमें कोई विरोध नहीं होता, उस स्थिति मूलतः ये एकरूप प्रकृति है। जब इस साम्यावस्था में खलबली होती है, तब संघर्ष छिड़ जाता है और हर गुण प्रमुख होना चाहता है। यह अवस्था विकास के आरम्भ की अवस्था है।

गुणों का एक प्रधान लक्षण है कि वे सक्रिय है। इनमें सदा क्रिया होती रहती है, परिवर्तन होता रहता है। यह क्रिया प्रकृति की साम्यावस्था में भी चलती रहती है। अन्तर इतना ही है कि उस समय की क्रिया से साम्यावस्था में कोई गड़बड़ी पैदा नहीं होती विकास का क्रम चल नहीं पड़ता।

बात यह है कि गुणों में दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं —

1. सरूप परिवर्तन – सरूप परिवर्तन उसको कहते हैं जब प्रत्येक गुण अन्य गुणों से अपने-अपने मौलिक तत्व को खींचकर अपने में ही समा लेता है। ऐसी स्थिति में सत्व सत्व में, तम तम में और रज रज में समाहित हो जाता है। ऐसी अवस्था में समस्त कार्योत्पत्ति क्षीण पड़ जाती है इसी को प्रलयावस्था कहते हैं।

2. विरूप परिवर्तन – विरूप परिवर्तन उसको कहते हैं जब तीनों गुणों में से एक गुण प्रबल होकर शेष दो गुणों को अपने अधीन कर लेता है। इसी अवस्था में संसार का आरम्भ होता है। संसार रचना से पूर्व ये तीनों गुण अव्यक्त रूप में वर्तमान रहते हैं। इनकी यह साम्यावस्था ही सांख्य की 'प्रकृति' है। 'विरूप परिणाम' में हर गुण दूसरे को दबाकर स्वयं प्रमुख होना चाहता है। यह क्रिया हर गुणों तक सीमित नहीं रहती, दूसरे गुण को भी प्रभावित करती है। इस क्रिया से प्रकृति में एक हलचल सी मच जाती है और संसार का क्रम चल पड़ता है। इस हलचल को कभी-कभी 'गुणक्षोभ' कहा जाता है।

सांख्य ने तीन गुणों को इसलिए माना क्योंकि इनके द्वारा इतने विधान की व्याख्या

नहीं हो सकती। दो गुण होने से एक गुण दूसरे गुण का खंडन करेगा। तीन गुणों से विश्व की व्याख्या हो जाती है, इससे ज्यादा की आवश्यकता नहीं है। अतः प्रकृति विश्व की सृष्टि और विकास का मूल कारण है। इसे चेतना नहीं, ज्ञान नहीं, सूझ-बूझ नहीं फिर भी यह यन्त्रवत कार्य करती जाती है। ऐसे कार्य जिन्हें यह समझ नहीं सकती। इन तीन गुणों की रस्सी से पुरुष बंधा है और पुरुष के मोक्ष के लिए प्रकृति के कार्य होते हैं किन्तु 'प्रकृति' को उसकी चेतना नहीं। चेतना केवल पुरुष को है।

प्रकृति के विरुद्ध अनेक आपत्तियाँ उठायी गयी हैं जो इसप्रकार हैं —

1. प्रकृति को सांख्य ने निरपेक्ष तथा स्वतंत्र माना किन्तु सांख्य स्वयं कहता है कि बिना पुरुष के सहयोग के प्रकृति सृष्टि-कार्य नहीं कर सकती। इसकारण प्रकृति को परतंत्र मानना होगा। फिर देखा जाता है कि जब पुरुष अपने स्वाभाविक स्वरूप को पहचान लेता है तब प्रकृति इस पुरुष के लिए अन्तर्ध्यान हो जाता है। अतः निरपेक्ष भी नहीं है।

2. सांख्य ने प्रकृति

को Impersonal माना जबकि सांख्य में प्रकृति को गुणवती, उदार आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। वह उपेक्षाभाव से पुरुष की सेवा करती है। वह सुकुमार एवं संकोचशील है। वह देवी तथा निःस्वार्थ है। प्रकृति को सांख्य में स्त्री का रूप माना इसतरह प्रकृति को Impersonal माना जाता है।

3. प्रकृति को अचेतन माना गया है। विश्व की सुन्दरता, विविधता और व्यवस्था देखकर इस कथन को मानना सन्तोषप्रद नहीं है।

4. सांख्य प्रकृति को सक्रिय मानता है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार जीव कार्यों को करता है उसका भोग उसे स्वयं करना चाहिए। किन्तु सांख्य यह मानता है कि प्रकृति के कर्मों का फल पुरुष भोगता है। इससे यहाँ कर्म सिद्धान्त का खंडन होता है।

इसप्रकार सांख्य दर्शन प्रकृति को विश्व का मूलकारण मानती है। क्योंकि विश्व एक कार्य-रूप है जिसका अवश्य ही कुछ कारण होगा। पुरुष को इस विश्व का कारण नहीं माना जा सकता है। क्योंकि वह कार्य-कारण श्रृंखला से मुक्त है। इसीतरह भौतिक पदार्थ और अणु से भी विश्व की पूर्ण व्याख्या नहीं हो सकती बुद्धि, मन, अहंकार इत्यादि की व्याख्या भौतिक तत्वों से नहीं हो सकती है। प्रकृति इनकी भी व्याख्या कर देती है। अतः सांख्य के अनुसार प्रकृति को विश्व का मूल कारण मानना ही होगा।